कबीर

जन्म	:	अनुमानतः 1399 (ज्येष्ठ पूर्णिमा 1456 वि०)।
निधन	:	अनुमानतः 1518।
निवास	:	काशी (वाराणसी) और मगहर (बस्ती, उत्तर प्रदेश)।
माता-पिता	:	नीमा और नीरू।
वृत्ति	:	बुनकरी।
दीक्षागुरु	:	स्वामी रामानंद, 'रामावत' संप्रदाय के प्रवर्तक, प्रसिद्ध वैष्णव संत और आचार्य।
रचनाएँ	:	बीजक/कबीर ग्रंथावली।

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के एक प्रमुख कवि के रूप में समादृत कबीर मध्यकालीन भारतीय इतिहास के एक क्रांतिकारी विचारक, द्रष्टा, ज्ञानी और लोकोपदेशक के रूप में भी स्मरण किए जाते हैं। मध्यकालीन भारत में भक्ति की क्रांतिकारी भावधारा को उमड़ते प्रवाह के रूप में जन-जन तक पहुँचाने का श्रेय उन्हें प्राप्त है। समाज के पिछड़े, वंचित और दलित वर्ग से आनेवाले कबीर प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण प्रचलित शिक्षा से वंचित रहे, वे साक्षर भी नहीं थे; किंतु उन्हें अशिक्षित नहीं कहा जा सकता। कुशाग्र बुद्धि, प्रतिभा और अरुद्ध संवेदना के बल पर सत्संगति, देशाटन आदि के द्वारा उन्होंने रूढ़िमुक्त ज्ञान और स्वनिर्भर विवेक अर्जित किया। अनुभव और निरीक्षण से सिद्ध-प्रमाणित उनका ज्ञान प्रौढ़ और सुदृढ़ था तथा विवेक, अचूक और निर्णयात्मक था। उनके पीछे काल की कसौटी पर खरी उतरने वाली एवं युग-समाज के अनुभवों से परखी गई श्रुति परंपरा का बल था। वे 'कागद की लेखी' की जगह 'आँखन देखी' को तरजीह देते थे। उनकी सरल और निश्छल कविता, जो सीधे हृदय को छूती है, उनके अनुभव-सत्य से जगमगाती है।

कबीर ने धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों पर कठोर प्रहार किए, पाखंड-मिथ्याचार-प्रदर्शन और भेदभावना पर जमकर आघात किए। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों की कट्टरता के लिए पुरोहितों और मुल्लाओं का तिलमिला देने वाला उपहास उड़ाया। मनुष्य-मनुष्य के बीच तमाम तरह के भेदभाव को फटकारा और जो भी इस भेदभाव के पक्ष में दिखा उसपर अपनी निर्मम वाणी के कोड़े बरसाए। किंतु इस तीखी आलोचना के पीछे करुणा, सहानुभूति और सद्भाव की गहरी मानवीय अंतर्भावना थी। वे धर्म, संप्रदाय, जाति आदि के बाहरी विभेदों के नीचे मनुष्यमात्र की एकता के धरातल पर खड़े होकर सामाजिक ऐक्य का उत्कट अनुभव करा सके। उस कलह-विमूढ़ युग-परिवेश में यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण था।

कबीर निर्गुण-निराकार ब्रह्म के उपासक और भक्त थे। निर्गुण ब्रह्म अब तक प्रायः तत्त्वबोध और

ज्ञान का ही विषय माना जाता था । कबीर ने उसे प्रेम और भक्ति का भी विषय बनाया । वे निर्गुण ज्ञानाश्रयी भक्ति के प्रमुख कवि हैं । ज्ञान, प्रेम और भक्ति उनके काव्य का प्राणतत्त्व है ।

मन-वचन-कर्म की एकता, सत्य, अहिंसा, नैतिकता और सदाचार उनका प्रधान संदेश है ; किंतु यह संदेश नीरस और शुष्क नहीं है । प्रत्यक्ष बोध, प्रतीति और अनुभव की परिपक्व परिणति के रूप में यह उनके काव्य में चरितार्थ है ।

कबीर ने नाथपंथी योगियों और सूफियों से बहुत कुछ सीखा और पाया, किंतु वे मूलतः वैष्णव भक्त हैं । वैष्णव भावधारा, चिंतन और साधना को उन्होंने नई ऊँचाइयाँ दीं ।

मध्यकालीन भक्तिकाव्य में कबीर की उपस्थिति एक ऐसे महान लोकद[illegible]त्र के रूप में है, जिसने अपने समय और बाद की हिंदी मनीषा को तो गहराई से प्रभावित किया ही ; साथ ही जिसके रचनात्मक प्रभाव की ऊर्मियाँ हिंदीतर भारतीय साहित्य को भी झंकृत करती हैं ।

कबीर ने 'साखी', 'सबद' और 'रमैनी' की रचना की । साखियाँ दोहा छंद में हैं और वे अतिशय लोकप्रिय हैं । सबद वस्तुतः गेय पद हैं और रमैनी प्रधानतः चौपाई जैसे छंद में रची गई है । आगे के काव्य में ये छंद और काव्यरूप खूब अपनाए गए ।

यहाँ प्रस्तुत कबीर के दो पद डॉ० जयदेव सिंह एवं डॉ० वासुदेव सिंह के द्वारा संपादित 'कबीर वाङ्मय' के खंड-2 से संकलित हैं । प्रथम पद में कबीर का आलोचक रूप मुखरित हुआ है । संप्रदायमुक्त सहज आत्मानुभव के धरातल से कबीर ने विविध धर्म-संप्रदायों में प्रचलित स्वांग और बाह्याचार की तीव्र आलोचना की है । तत्त्वबोध न हो तो तमाम तरह की धार्मिक-आध्यात्मिक गतिविधियाँ पाखंड बन जाती हैं । कबीर का जोर सच्ची अनुभूति और आत्म-साक्षात्कार पर है । द्वितीय पद में कबीर का भक्त और प्रेमी रूप प्रभावशाली अभिव्यक्ति पाता है । ईश्वर, जो प्रियतम है, से मिलने और एकाकार होने की उनकी उत्कट लालसा अत्यंत वेदनामय शब्दों में यहाँ सहज अभिव्यक्ति पाती है । इस तड़प के बिना कबीर एक शुष्क उपदेशक भर रह जा सकते थे । ईश्वर से मिलन की यह विकल करनेवाली प्यास ही उनके सहज कवि रूप को प्रतिष्ठित करती है ।

◆ ◆ ◆

"ऐसे थे कबीर । सिर से पैर तक मस्त-मौला; स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़; भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड; दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त; भीतर से कोमल, बाहर से कठोर; जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय । वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसीलिए उनकी उक्तियाँ बेधनेवाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे ।

भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया – बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर । भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है । उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके ।"

(कबीर)

– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

पद - 1

संतो देखत जग बौराना ।
साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना ।।
नेमी देखा धरमी देखा, प्रात करै असनाना ।
आतम मारि पखानहि पूजै, उनमें कछु नहिं ज्ञाना ।।
बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ै कितेब कुराना ।
कै मुरीद तदबीर बतावैं, उनमें उहै जो ज्ञाना ।।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्व भुलाना ।।
टोपी पहिरे माला पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सब्दहि गावत भूले, आतम खबरि न जाना ।।
हिंदु कहै मोहि राम पियारा, तुर्क कहै रहिमाना ।
आपस में दोउ लरि लरि मूए, मर्म न काहू जाना ।।
घर घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना ।
गुरु के सहित सिख्य सब बूड़े, अंत काल पछिताना ।।
कहै कबीर सुनो हो संतो, ई सब भर्म भुलाना ।
केतिक कहौं कहा नहिं मानै, सहजै सहज समाना ।।

पद - 2

हो बलिया कब देखौंगी तोहि ।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी ब्यापै मोहि ।।
नैन हमारे तुम्ह कूँ चाहैं, रती न मानैं हारि ।
बिरह अगिनि तन अधिक जरावै, ऐसी लेहु बिचारि ।।
सुनहु हमारी दादि गुसाँई, अब जिन करहु बधीर ।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामी, काचै भांडै नीर ।।
बहुत दिनन कै बिछुरै माधौ, मन नहिं बाँधै धीर ।
देह छताँ तुम्ह मिलहु कृपा करि, आरतिवंत कबीर ।।